HANS SHODH SUDHA, Vol. 2, Issue 1, (2021), pp. 35-42

स्त्रीवादी भाषा और अनामिका का साहित्य

डॉ. सुमित पी.वी., हिन्दी विभाग, पी.आर.एन.एस.एस. कॉलेज, मट्टनूर, कण्णूर, केरल - 670702
Email: sumithpoduval@gmail.com

दुनिया में सब कहीं औरत के दुख, शिकायतें, समस्याएं एक ही है। आज ी जागरूक होने रगी है। अनामिका की रचनाओं में ी की इस जागरूकता की चिनगारियां हम देख सकते हैं। कहीं वह स्पष्ट है तो कहीं अस्पष्ट और निगूढ़। पुरुष सत्ता को कड़ी चुनौती देने वारा एक युग निकट भविष्य में जरूर होगा। **स्त्री** मुक्ति का सवार कठिन सवार है। बहुत जल्दी वह हर नहीं हो सकता। धैर्य और रंबे संघर्ष तथा गहरे संकल्पों के साथ उससे जूझने-टकराने की जरूरत है। अनामिका का **स्त्री** विमर्श बहुत व्यापक है और वह **स्त्री** के प्रति सकारात्मक पक्षपात की बात करता है। अर्थात् अनामिका के संदर्भ में कहा जाए तो **स्त्री** विमर्श अपने समय और समाज के जीवन की वास्तविकताओं तथा संभावनाओं को तराश करने वारी **दृष्टि** है। उनके पात्र शोषण और दुख को ओढ़ते नहीं है **बल्कि** उससे जूझते हैं। कुर मिराकर अनामिका और उनकी रचनाएं **स्त्री** मुक्ति को बढ़ावा देने का काम करती हैं।

समाज में ी के प्रति जागृति पैदा करना और उसके अÂस्तत्व को स्थापित करने की कोशिश है ीवाद। इस मत से ओतप्रोत साहित्य को ीवादी साहित्य कहा जाता है। सन् 1960 के बाद अमेरिका में ीवाद का प्रचार प्रसार हुआ। ी के हाथ में अधिकार थे, रेकिन मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था जब पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी तो सब कुछ उल्टा हो गया। इस संदर्भ में एंगेल्स ने कहा है-"मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मक का अवतरण वास्तव में औरत जाति की सबसे बड़ी हार थी। सत्य तो यह है कि ी के रिए ऐसा स्वर्ण युग वास्तव में एक मिथक के अरावा और कुछ नहीं। यह कहना कि औरत अन्या है, इस बात को सि° करता है, ी और पुरुष में कोई पारस्परिक संबंध नहीं था। वह चाहे धरती थी, चाहे माता, चाहे देवी, किंतु पुरुष की संगी-मित्र कभी नहीं थी। उनमें पारस्परिक साझेदारी का भाव नहीं था।"[1] पुरुष को सिर्फ अपने बारे में चिंता होती थी। प्रगति के पथ पर वह आगे बढ़ता गया। उसने नारी को कभी अपने समान नहीं बनने दिया। अपनी सहूरियत और सोच को साकार बनाने के रिए उसने **स्त्री** को विभिन्न रूपों में पेश किया। अरस्तू ने कभी कहा है-'औरत केवर पदार्थ है, जबकि पुरुष गति है।' यह बिल्कुर शोचनीय स्थति रही। पाइथागोरस कहते हैं-"अच्छे सि°ांत हैं, जो पुरुष की व्यवस्था एवं उजारे को जन्म देते हैं तथा बुरे सि°ांत हैं, जो अव्यवस्था, अंधेरा और औरत को जन्म देते हैं।"[2]

इसके अरावा मनु ने भी संहिता में ी को निकृष्ट वस्तु कहा है, और उसे बंधनों में रखने की सराह दी है। रोमन कानून औरत की मूढता पर रगाम रगाने के उद्देश्य से उसे हमेशा किसी के संरक्षण में रखने का निर्देश देता है। कुरान में औरत के प्रति नकारात्मक भाव दिखाया जाता है। पुरुष हमेशा चाहता है कि औरत में उसकी आदिम जादुई शक्ति भी बनी रहे, रेकिन एक ही ी, पत्नी और दासी कैसे बन जाए। इसका भी हर पुरुषों ने ढूंढ निकाला।

यह बिल्कुर असंगत-सा रगता है कुछ पुरुषों को कि Â ियां भी रिख रही हैं। रेखन की परंपरा हमेशा पुरुषों की रही है तो उनके रिए यह काफी अरोचक बात है कि Â ियां भी भाषा का प्रयोग करने रगी है। ी को बाल्यावस्था से ही अपने भावों व विचारों को छिपाकर रखने की आदेश दी जाती है। उसे कभी खुरे मंच पर अपने आपको, अपने शब्दों को, विचारों को प्रस्तुत करने का मौका ही नहीं दिया। आज भी Âस्थति पूर्णतः बदरी तो नहीं। भाषा किसी व्यक्ति को सामूहिक जीवी बनाती है। हम अगर बारीकी से देखें तो पहचान पायेंगे कि ी और पुरुष के बोरने, रिखने में बहुत ज्यादा अंतर है।

यूरोप और भारत में 14वीं-17वीं शती में कई ी-कवयित्रियां मौजूद थीं। मीरा का उनमें महत्वपूर्ण स्थान है। पहरे ी के रिए रिखना एक दुष्कर काम था। 'ी भाषा' शब्द या पदबंध हिंदी में नया है। "ीवादी रेखिकाओं के अनुसार भाषा, जिसके जरिए हम अपनी विश्वÂष्ट का निर्माण करते हैं,

केवर संप्रेषण का माध्यम नहीं है। यह ज्ञान के विविध क्षेत्रों में अपनी उपÂस्थति दर्ज कराने, अÂस्मता के निर्माण और दुनिया के परिभाषित करने का जरिया भी है। इसमें अभिव्यक्त भाषिक संबंध हमारे सामाजिक संबंधों की छाया होते हैं। भाषा के अध्ययन के रिए सामाजिक संबंधों के अध्ययन का रास्ता खुरता है। हमारी भाषा में ¯ाी-अर्थ, व्यवहार, इच्छा, जीवन शैरी, ¯ाी चेतना और ¯ाी-संस्कृति आदि को अभिव्यक्त करने वारा भाषिक रूप बहुत कम है।"[3]

हमेशा पुरुष के पैरों के नीचे दबती गई ¯ाी ने आधुनिक समय में अपने अंदर की ताकत को पहचान रिया है। उसे आगे बढ़ने और जग को कुछ कर दिखाने की इच्छा हुई है। उसमें मानसिक तथा वैचारिक परिवर्तन हुआ। इस मानसिकता को हम '¯ाीवाद' कह सकते हैं। भारत में ¯ाीवाद मुख्य रूप से धर्म, समाज, राजनीति, अर्थ व्यवस्था, परिवार... आदि क्षेत्रों में दिखाई देता है।

¯ाी संबंधी रेखन को हम किस तरह पारिभाषित करें? यह एक गंभीर चितन का विषय हो रहा है। क्या,¯ाी संबंधी रेखन Â¯ायों के –ारा ही रिखा जाना चाहिए? पुरुष रेखक Â¯ायों से जुड़े प्रश्नों और अनुभवों को अभिव्यक्त कर सकेंगे? इन समस्याओं का समाधान कभी एकपक्षीय होकर नहीं निकरेगा। सृÂष्ट का विकास पुरुष और ¯ाी के संयोग से ही होगा। रिंग-भेद के आधार पर ¯ाी-पुरुष को अरग करके देखना बिल्कुर असंगत एवं अन्याय है। साहित्य रेखन के संदर्भ में "जब रेखक करम उठाकर अपने रिखने का धर्म निभाता है, तब वह केवर रेखक होता है, ¯ाी पुरुष के शरीर से परे धर्म, समाज और परिवार से ऊपर उठ जाता है, जो उठ नहीं पाता कभी रेखक नहीं हो सकता।"[4] इसका मतरब है रेखक कभी ¯ाी-पुरुष नहीं होता है। वह सिर्फ और सिर्फ रेखक होता है।

¯ाी से जुड़ी समस्याओं का समाधान ढूंढ निकारना सिर्फ Â¯ायों का काम नहीं है। उसमें पुरुष को भी सहभागी होना चाहिए। मगर, '¯ाीत्ववाद' या '¯ाीवाद' पुरुष को सहभागी बनाने या मानने को तैयार नहीं है। इस जगह पर ¯ाीवादी भाषा की जरूरत पड़ती है। Â¯ायां अपनी मांग, अपने विचारों को किस भाषा के सहारे अभिव्यक्त करें? क्या, Â¯ायों की भाषा पुरुषों के समान होती है या उसमें कोई फरक है? इन बातों पर विचार करना बेहद जरूरी रगता है।

अनामिका कहती हैं "यह बात अपनी जगह दुरुस्त है कि भाषा एक रीराभूमि है तो एक यु°भूमि भी! अÂस्मता की रड़ाई हो या कोई अन्य मनोसामाजिक संघर्ष उसकी सबसे महीन और सार्थक अनुगूंजें भाषा में ही दर्ज होती है!"[5] वे मानती हैं कि साइकिर, टेरिफोन, मोटरकार, मोबाइर और इंटरनेट ¯ाी-भाषा के पड़ाव हैं। रोक साहित्य की तरह आज ¯ाी भाषा जिसे ई-मेर, एस.एम.एस. और ब्लॉग में प्रयोग किया जाता है, चटक, पुष्ट और बेबाक हो गई है। 'Â¯ायां' नामक कविता की ये पंक्तियां देखिए-

"सुनो हमें अनहद की तरह

और समझो जैसे समझी जाती है

नई-नई सीखी हुई भाषा!"[6]

समाज में ¯ाी के प्रति जो नकारात्मक भाव व्या[1]ा है उसके खिराफ आक्रोश नहीं बÂल्क सहमी हुई भाषा में समझाने की शैरी है इन पंक्तियों में। "'मैं' और 'मेरा' ¯ाी-रेखन के बीजाक्षर हैं, पर ¯ाी-रेखन आत्माराप नहीं है। यह 'मैं' और 'मेरे' का जो परिविस्तार है, उसमें निरवधि निस्समता है जो सबसे जुड़कर भी सबसे अरग है, अकेरी है और अकेरी रहना चाहती है। 'पंथ रहने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेरा, जान रो यह मिरन एकाकी विरह में है दुकेरा।' ¯ाी की क्या, यह तो मानव मात्र की नियति है। फिर भी समायोजन के यत्न होते हैं और होने भी चाहिए! और भाषा ही वह पुर है जो जोड़ता है या जोड़ सकता है।"[7] वे मानती हैं कि ¯ाी-पुरुषों के देखने, समझने की शैरी अरग होती है मगर उन सब में निहित अर्थ एक ही होता है। उस अर्थ को दूसरों के सामने प्रस्तुत करने का तरीका बिल्कुर अरग हो सकता है। कहीं भाषा रूपी पत्थर तोड़कर नई राह-नया रास्ता बनाने की बात भी अनामिका कर रही हैं।

पुरुषों की भाषा में फैरोसेंट्रिक कसावट जन्मजात होती है, औरतों को यह गढ़नी पड़ती है। ¯ाी रेखिकाएं हमेशा पुरुषों की तरह होने की कोशिश करती दिखाई नहीं देती। वे अपनी एक अरग अंदाज से नज़र आती हैं। भाषा की कसावट मात्र उसकी विशिष्टता नहीं, उसमें संवेग, प्रज्ञा, विवेक और बु° की अरग-सी आभा, अÂग्न जैसे शतरूपा, जर जैसे प्रवाहमान स्वभाव होना चाहिए। Â¯ायों की भाषा इस तरह की है। 'अनुवाद' कविता में अनामिका इस तरह कहती हैं-

"दरअसर इस पूरे घर का

किसी दूसरी भाषा में

अनुवाद चाहती हूं मैं,

पर वह भाषा मुझे मिरेगी कहां

सिवा उस भाषा के

जो मेरे बशे बोरते हैं?"[8]

अनामिका नामक रचनाकार वर्तमान Âस्थति-संदर्भ में परिवर्तन चाहती हैं। वह जानती हैं कि उसके रिए भाषा का होना जरूरी है। सिर्फ भाषा नहीं, उपयुक्त भाषा की जरूरत है। इस संदर्भ में डॉ. गरिमा श्रीवास्तव का कहना है- "वस्तुतः कोई भी ¯ाी जब रिखती हैं, तो यह जरूरी नहीं कि वह '¯ाी भाषा' में ही रिखे, पुरुष भाषा रैंगिक विभेद की भाषा है, जिस समाज में रहकर ¯ाी रचना करती हैं, वह ¯ाी को पुरुष भाषा ही प्रदान करती है। यदि ¯ाी रचनाकार '¯ाी भाषा' और 'पुरुष भाषा' का अन्तर नहीं पहचानती या ¯ाी भाषा के प्रति सचेत नहीं है तो वह अनजाने में ही पुरुष भाषा में ही सृजनरत रहती है। यह सचेतनता तभी संभव है जबकि वह पितृसत्तात्मक औजारों और कूटनीतियों से भरी-भांति वाकिफ हो।"[9] अर्थात् ¯ाी जब तक अपने चारों ओर को अच्छी तरह से समझ न रेती है तो उसे कठिनाई हो सकती है। पुरुष सत्ता व पितृसत्ता के षडयंत्रों के बारे में उसकी जानकारी जब तक स्पष्ट और संपूर्ण नहीं होगी तब तक वह अपनी भाषा गढ़ नहीं पाएगी। उसे सावधानी से अपने विचार को अपनी भाषा –ारा अभिव्यक्त करना होगा।

"बात का चट से जवाब देना पितृसत्ता के दरबार में उतना बड़ा अपराध है जितना 'हम रड़कियां पतित होना चाहती हैं' का नटखट उद्घोष। जबान रड़ाना शायद नैन रड़ाने से भी ज्यादा बड़ा अपराध है। मानकर चरा जाता है कि जबान रड़ाने की जरूरत ही दोयम दर्ज़े की रड़कियों को पड़ती है।"[10] आनामिका कहती हैं कि समाज की कुछ Â¯ायों का बिना बोरे काम चर ही नहीं सकता-जैसे वेश्याएं, रणचंडियां, दासियां, विषकन्याएं, निउनियाएं आदि। दरअसर ¯ाी-आंदोरन का सबसे सशक्त औजार उसकी भाषा ही है। साहित्य और उसकी भाषा से आत्मतोष और मुक्ति दोनों संभव है। ¯ाी रचनाकारों के वैचारिक आधार पर ही उनका रचनात्मक Âष्टकोण निर्मित हुआ है जिसके अनुसार ¯ाी के अनुभव ¯ाी के ही हो सकते हैं क्योंकि ¯ाी की देह, मन और उसकी विशिष्ट सामाजिक Âस्थति से जुड़े होते हैं इसरिए ¯ाी ही अपने अनुभवों और अनुभूतियों के बारे में प्रामाणिक ढंग से रिख सकती है। पुरुष इसका अनुमान कर सकता है, प्रामाणिक तौर पर उसका रेखन ¯ाी के बारे में हो सकता है, मगर उसे हम ¯ाी रेखन या ¯ाीवादी रेखन नहीं कह सकते हैं।

अनामिका उपन्यास रिखती हैं, कहानियां रिखती हैं, समीक्षा करती हैं, समाचार पत्रों में स्तंभ रिखती हैं-फिर भी उनकी ख्याति एक कवयित्री के रूप में हैं। उन्होंने छंदों का वैविध्य तो अपनी कविताओं के रिए नहीं चुना रेकिन भाषा के स्तर पर सीधी, सटीक, भावपूर्ण और वैचारिक सूत्रों में ब° अनेक प्रयोग किए हैं। अरग-अरग पृष्ठभूमियों ने उनकी भाषा को एक अरग ही प्रकृति में डार दिया है। उसमें एक साथ रोक की भाषा, महानगरीय भाषा, देशज शब्दावरी का प्रयोग आदि हम देख पायेंगे। उनकी रचनाओं में देह-केंश्ति अनुभव, ¯ाी की विभिन्न भूमिकाएं, घर के प्रति मोह, शोषण का विरोध, सामान्य से सामान्य प्रसंगों की अभिव्यक्ति और ¯ाी मुक्ति की चेतना की बहुरता Âष्टगोचर होती हैं।

"औरतों को डर नहीं रगता

कुछ भी कह जाने में

उनको नहीं होती शर्मिन्दगी

मानने में

कि उनमें

पानी है, मिट्टी भी।"[11]

अनामिका की कविताओं में अधिकतर ¯ाी के अनन्त दुःखों की एक असमा¹ा कहानी है। कहीं वह अपनी दुख-व्यथा की अभिव्यक्ति खुद करती है तो कहीं रोग उसे देखते ही समझ रेते हैं।

"मैं एक दरवाजा थी

मुझे जितना पीटा गया

मैं उतनी खुरती गयी

.....

और अन्त में सब पर चरी जाती है झाड़ू

तारे बुहारती हुई,

बुहारती हुई पहाड़,वृक्ष, पत्थर-

सृÂष्ट के सब टूटे-बिखरे कतरे जो

एक टोकरी में जमा करती जाती है

मन में, कहीं भीतर!''[12]

गौरतरब है कि अनामिका की भाषा कभी तीव्र या उग्र नहीं होती। रेकिन कुछ ऐसे संदर्भ भी हैं जहां पर वे ¯ीवादी होकर ही रह जाती हैं। वे मानती हैं कि पुरुषों में बचपना है। वे हमेशा कुछ न कुछ करते रहते हैं तथा उन्हें माफ कर देना Â¯ायोचित है। कभी-कभी Â¯ायां अपना विशेह भी दिखाती है। घंटों निराहर रहकर, बातचीत न करके वे बैठ जाती है। फिर भी पुरुष(पति) उसे मनाने नहीं आता है। अगर इस बीच कभी उसे रगता है कि यह थोड़ा ज्यादा ही उछर-कूद रही है तो रात-जूतों, गारी-तारी से उसे उसका औकात दिखा देता है और कहता है-घर से निकर, भाग! ''कुर मिराकर ऐसा 'ढोर' हो जाती हैं रड़कियाऽ, जो दूर से बजती हुई ही 'सुहावन' रगती हैं और अगर कभी पास आकर डंके की चोट पर अपना हक मांगे तो ढोर-गंवार-शूश-पशु-नारी वारी 'ताड़ना' है ही उनके स्वागत को। सीधी मारपीट नहीं तो बरात्कार ही सहीः अपने शयनकक्ष में पति की, कार्यक्षेत्र में बॉस आदि ड्राकुराओं की, सड़कों पर साक्षात् गुंडों की जबर्दस्ती - होझ्योपैथिक खुराकों में हो (धीरे-धीरे नसों में उतरती हुई) या फिर काढ़े की तरह अचानक मुंह से 'कांडी' रगाकर घुटा दी गई-त्रासद तो है ही! पर इस त्रास का मुकाबरा आंसुओं से नहीं, एक प्रखर रणनीति अÂख्तयार करके ही हो सकता है!''[13] इन सब विपरीत परिÂस्थतियों में अगर ¯ी कुछ रिखती भी है तो उसे पुरुषों –ारा अवमानना सहनी भी पड़ती है। ¯ी-मुक्ति पर गोÂष्ठयां और चर्चाएं खूब चर रही है। फिर भी मुक्ति की चर्चा कम और कुछ ऐसी बातें ज्यादा होती हैं जिनमें ¯ी को ही सभी समस्याओं के रिए दोषी ठहराया जाता है।

''खुद जिझ्मेदार हैं औरतें अपनी दुर्गति का

पिटती हैं इस खातिर कि काम करती हैं पिटने का

रुटती हैं इस खातिर कि खुद ही देती हैं

अपने रक-दक से वे न्योता -

आ बैर, हमें मार! आ बाघ हमें खा!''[14]

अर्थात् बात करते हैं उत्तर आधुनिक जमाने में ¯ीवाद और ¯ी मुक्ति की, रेकिन मानसिक विकास रत्ती भर का भी नहीं हुआ है। Â¯ायों को अपनी अÂस्मता की रड़ाई भाषा के सहारे ही रड़नी होगी।

ऐसी कई रेखिकाएं हिंदी में आज हैं जिन्हें ¯ीत्व की अवधारणा से परिचय नहीं है। वे इन शब्दों से यानी कि ¯ीत्ववादी रेखन या ¯ी रेखन से काफी परेशान दिखती है। पुरुष वर्चस्ववादिता के इस समय में वे अपनी अरग पहचान बनाने से भी डरती हैं। अगर किसी औरत ने दम साधकर कुछ रिख भी रिया तो उसे उधारू, नकर, संदिग्ध कहकर दूर रखा जाता है। ''दुःखद यह है कि हिंदी की रेखिकाएं सब तरह के अपमान सहती रहती हैं। कई तो इस सहनशीरता को ¯ी का मूल्य तक मान बैठी हैं। यह भयानक अन्याय का आभ्यंतरीकरण जैसा रगता है। बात उनके कान तक भी पहुंचती होगी रेकिन वे सहती रहती हैं। वे उसका प्रतिवाद नहीं करतीं। फिर वे उसमें भी एक संतोष खोज रेती हैं कि ¯ी चूंकि रचनात्मक होती है इसरिए सहनशीर भी होती है। इससे असहनशीर रेखिकाओं को किनारे कर दिया जाता है। सहनशीरता से यहां अर्थ पुरुष की बारीक ज्यादतियों को सहने वारी ही है। हिंदी में यह तो होता रहता है।''[15]

¯ी रेखन कभी भी अपने विमर्शात्मक रूप में नहीं आ पा रहा है। ¯ी की भाषा पर विचार करती हुई इरेग्रे कहती हैं कि कोई भी भाषा 'यूनिवर्सर' नहीं होती। हर यूनिवर्सर कहराने वारी भाषा मूरतः पुरुष की भाषा होती है। अनामिका रिखती हैं-''पुरुष-शरीर बड़ा कमजोर होता है, बेटी! माटी और मोम का पुतर! ¯ी में अÂग्न का तेज होता है! अÂग्न धारण की योग्यता पुरुष में त्याग-तपस्या के बाद ही विकसित होती है! त्याग-तपस्या के बाद ही उसकी मिट्टी पकती है और मोम पर कवच-सी चढ़ाती है कि वह पिघरे भी तो भीतर बहे, पिघरकर बिखरे नहीं।''[16] कहीं न कहीं आक्रोश का भाव इन वाक्यों में झरकता है।

¯ी रेखन या ¯ीवादी रेखन के अगर-बगर में उठ-खड़े होने वारे कई सवार हैं। उनमें से एक हैं ¯ीवादी भाषा की तराश क्यों है? इसका प्रथम पक्ष - अपने अनुभवों की प्रामाणिक अभिव्यक्ति हेतु ¯ी अपनी भाषा चाहती है। वर्तमान भाषा पुरुष केंश्कि है, Â¯ायों का अनुभव जगत् पुरुषों से भिन्न है। अतः भाषा भी अरग हो। ''भाषा जो ¯ी की नहीं है उसमें

ीा कैसे अपने को अभिव्यक्त करती है। उसकी अभिव्यक्ति में क्या सामान्य और विशिष्ट कठिनाइयां होती हैं। भाषा के वर्गीय आधार पर देखें तो शक्तिशारी और दमित की भाषा में क्या अंतर होता है। स्वाभाविक अभिव्यक्ति के रिए असहज भाषा का प्रयोग ीा जब करती है तो उसे कितनी असहजताओं से गुजरना पड़ता है, उस भाषा को आत्मसात् करने के रिए कितने अतिरिक्त प्रयास करने पड़ते हैं।"[17] Â ायों की अपनी नयी दुनिया गढ़ने के रिए नयी भाषा की सृÂष्ट जरूरी है। सुधीश पचौरी ने कहा है-"जिस तरह शहर अथवा गांव में अकेरी ीा घर से बाहर निर्भीक होकर विचरण नहीं कर सकती। घर से बाहर अकेरी औरत जितनी असुरक्षित है उतनी ही साहित्य में असुरक्षित। इसका कारण भी भाषा की 'शिश्न केंश्किता' है जो उसे शिकार बनने से बचने के रास्ते नहीं देती।"[18]

अनामिका कभी भी अपने साहित्य में यह नहीं कहती कि ीा को पुरुष से मुक्ति चाहिए। मगर वे चाहती हैं कि बराबर का अधिकार दोनों का हो। पुरुष वर्चस्वी समाज में Â ायों के संघर्ष को आगे बढ़ाने का काम वे भरपूर करती हैं। अनामिका की रचनाएं ीा की नई छवि गढ़ने का काम मात्र नहीं करती बÂल्क ीा की सीमित दुनिया से बाहर निकरकर अपने युगीन समस्याओं से तारमेर जोड़ने की कोशिश भी करती हैं। उपन्यास, रेख, कहानी, कविता, स्तंभ कुछ भी हो अनामिका की अभिव्यक्ति की भाषा उनकी पहचान है। उसे हम ीा भाषा या ीावादी भाषा कह सकते हैं।

अनामिका के साहित्य का ीावादी भाषिक परिप्रेक्ष्य में देखने-परखने का यह प्रयास उनकी रचनात्मक Âष्ट को समझने का प्रयास भी है। इस प्रयास के दौरान भाषा के दो रूप दिखाई देंगे-सहज रूप में आई हुई ीा भाषा पहरा रूप है। जो कि अनामिका के ीा होने के कारण उनकी चेतना के अंग है। दूसरी आरोपित ीाभाषा। जो कि हमारे समकारीन ीावादियों की आक्रामकता व उग्र तेवर का परिचायक है। जाहिर सी बात है कि सब कहीं प्रयोग की जाने वारी सहज ीा भाषा को अपने आप पहचान भी प्रा[1]ा है। अनामिका कहती हैं-"साहित्य में सब छन रहा है-और एक अरग ही भाषा में-क्योंकि Â ायों का अनुभूतिमंडर ही अरग नहीं होता, उनकी भाषा का मिजाज भी कुछ अरग होता है। उसके मनोसामाजिक कंस्ट्रक्ट अरग होते हैं। इतिहास, मिथक और आत्मकथा के सÂझश्रण (बायोमाइथोग्राफी) से कथा-साहित्य में नया स्पेस सृजित हो रहा है।"[19] अनामिका की भाषा में उपमान, प्रतीक, बिंब आदि की प्रचुरता देखने को मिरती है। उनकी भाषिक विशिष्टता के रूप में इसे भी देखना संगत एवं अनुयोज्य रगता है। विशेषतः ीा जगत् से रिए गए ये भाषिक उदाहरण। यह सिर्फ अनामिका की मात्र विशिष्टता है। अन्य रचनाकारों की अपेक्षा उनकी रचनाओं में भाषाई विशिष्टता के कारण एक ताजगी और एक नयापन आया है। अनामिका का अनुभव संसार इतना व्यापक और विस्तृत है कि उसमें शब्दों और शाÂब्दक प्रयोगों की कोई कमी नहीं है। अंग्रेजी भाषा के शब्दों को भी वे बिना संकोच के प्रयोग करती हैं। जैसे-टु बी ऑर नॉट टुबी दैट इज द दृेफ्रान, वेर इट्स योर प्रोब्लेम, आदि। इस बारे में अनामिका कहती हैं-"बशे तो फिर भी बशे हैं, पर हम, हम जो कि 'द्दावन समीप भये सित केसा' की Âस्थति से गुजर रहे हैं, दुनिया की इतनी ऊंच-नीच देखी है हम ने-हम भरा किस मुंह से अÂस्मता-अंदोरनों को '*well it's your problem*' भाव से टकरा देते हैं? हमें क्यों याद नहीं आता कि इस दुनिया में किसी की समस्या सिर्फ उसी की नहीं होती। खासकर आज का जो हमारा तीसरी दुनिया का समाज है-उसमें अÂस्मताओं का ऐसा जटिर अंतर्गुंफन मंचित हुआ है कि किसी एक धागे की यह हैसियत कहां है कि वह दूसरे से कह पाए-*Well it's your problem*. शहराती औरतें गांववारियों से यह कहकर नहीं निकर सकतीं, सवर्ण अवर्ण से, कोठिवारियां, कोठेवारियों से या झुग्गी वारियों से, अमरीकी औरतें तीसरी दुनिया की औरतों से।"[20] समस्या सब कहीं एक है, रेकिन उसे कहने की भाषा अरग-अरग हो सकती है। ीावादी भाषा में भी यह अनेकता में एकता का भाव है। पन्थ रहने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेरा जान रो यह मिरन एकाकी विरह में है दुकेरा/ मौन मधु हो जाए /दुःख अपने पहरे चरण में विस्फोट है, दूसरे चरण में फेविकॉर/ बचपन स्मृतियों का फिक्सड डिपॉसिट/ अंतरंग संबंध पुराने ऊन का स्वेटर होते हैं, उन्हें एक बार उधेड़कर दुबारा नये डिजाइन, नई संगति, नए कांÂश्बनेशन में बुना देना इतना आसान नहीं होता/ विवाह बंधन तो एक फेविकॉर जोड़ है कि, घसीट मारता है पर टूटता नहीं। इस तरह के तमाम प्रयोग अनामिका की रचनाओं में मिर जाएंगे। कवि-आरोचक केदारनाथ सिंह कहते हैं – "ीा रचनाकारों में - खास तौर पर नारीवादी रेखन में -इधर जो प्रवृत्तियां दिखाई पड़ती हैं अनामिका का काव्य संसार उनसे थोड़ा अरग है। वे इस क्षेत्र में एक अधिक संग्रथित Âष्टकोण की हामी दिखती हैं, जिसमें जीवन के विधेयात्मक तत्वों की स्वीकृति का अर्थ ज्यादा मूल्यवान है। उनकी कविताओं को ध्यान से देखा जाए तो वहां कुछ चीजों

का स्वीकार और कुछ चीजों का एक यातनाभरा निषेध - ये दोनों चीजें एक साथ दिखाई पड़ेंगी।"[21] अर्थात् अनामिका अपने संपूर्ण रेखन में कुछ अरग ही ढंग की भाषा को साथ रेकर चरती हैं।

देशज शब्दों की बहुरता भी उनकी रचनाओं में काफी देखने को मिरती है। रोक जीवन को और उनके इतिहास को अपनी रचनाओं में संग्रथित करके दिखाने की कोशिश अनामिका की खासियत है। ी-भाषा में मुहावरों-कहावतों को सामान्य से सामान्य जनता के साथ जोड़कर प्रस्तुत करने की भाषाई क्रीड़ावृत्ति भी उनकी है। जैसे-कार की पीठ में, काजर की धार से सजूंगी मैं कभी न कभी। बिंबों को भी वे खुरकर प्रयोग करती हैं-चाणक्य की चुटिया, बैतार की रुटिया/दानयज्ञ के बाद बची हुई हर्षवर्धन की खारी टोकरी। आदि।

अनामिका के उपन्यास हैं-दस –ारे की पींजरा और तिनका तिनके पास। दोनों में कुछ ऐसी ी पात्र प्रमुख हैं जो ी मुक्ति के रिए प्रयासरत हैं। उपन्यास में ीवादी भाषा की झरक सर्वत्र देख सकते हैं हम। फिर भी मानकीकृत और परिनिÂष्ठत भाषा की जगह वर्तमान जन संचार माध्यमों की भाषा को उन्होंने अपनाया है। भाषाई विशिष्टता उपन्यासों के शीर्षक और अध्यायों के शीर्षकों से पता चर रहा है। जैसे कुछ शीर्षक इस तरह हैं-दारू पार्टियों का रीतिकार; एरिस इन थण्डररैंड, हथिया दांत निपोरे बाबा, ढेरा बाई; कहां जाई का करी। एक जगह पर उन्होंने ऐसा रिखा है-"भारतीय रेर के डिब्बों-सी हैं सेक्स वर्कर्स-तरह तरह की भाषिक अÂस्मताएं इनमें घुरी हैं। सादा कपड़ों में (पुरिस की वर्दी उतारकर) उनसे और तकरीफों से रू-ब-रू होना एक ऐसा अनुभव है जो जिंदगी में कभी आदमी को चैन से नहीं सोने दे। बिहार-बंगार और नेपार में दारिश्य और रावण्य दोनों ज्यादा हैं, इसरिए वहां की रड़कियों की तो भरमार है।"[22] अर्थात् रेखिका कहना यह चाहती हैं कि भाषा की शक्ति और पहुंच असीम है, वह चाहे ीभाषा हो या पुरुष भाषा। ीवादी चिंतन से ओतप्रोत भाषा और चौंका देने वारे भाषिक प्रयोगों से अनामिका पाठकों को प्रभावित करती हैं और साथ-साथ अपनी रेखन-प्रतिभा की असीमिता का भी एहसास करा रही हैं।

अनामिका की भाषा में 'फेमिनिस्ट' की आवाज़ भी है। रेकिन सामान्य रूप से कुर मिराकर हम उनकी भाषा को फिमिनिस्ट भाषा की संज्ञा संबोधित नहीं कर सकते। उस भाषा में आत्म विश्वास भी है और जागृत करने का प्रयास भी। कहीं उनके ी पात्र पुरुषों से टकराने की सोच नहीं रखती बÂल्क उनके समानांतर अपना अÂस्तत्व बनाना चाहती है। वह अपना एक स्वतंत्र अÂस्तत्व-अÂस्मता चाहती है। इसीरिए कहती है 'हमें भी कायदे से सुनो, हमारी भी जरूरतें हैं, मांगें हैं।' पुरुष को पार करने की नहीं साथ चरने की चाहत है उनमें। अनामिका मानती हैं कि ीभाषा की सबसे बड़ी ताकत त्रास और मुक्ति के आनंद का समायोजन, तर्क और अन्तः प्रज्ञा मूरक उस अर्ध विस्मृत भाषिक रय का समायोजन है।

Â ियों को उनकी सोच से मुक्ति दिराना जरूरी है। "सदियों से न्यूड ी का अध्ययन करते हुए आ रहे पुरुष को रगता है कि समकारीन ी-रेखन खतरनाक है, क्योंकि नया बवंडर है। शायद इसीरिए ही कुरीन मानी जाने वारी Â ियां रेखन के चरते खुरे दायरे में आना पसंद नहीं करती।"[23] अनामिका ने रिखा हैं-"कॉरेज के रास्ते में एक बड़ा-सा पोस्टर रगा है। रोज मेरी आंखें उससे टकराती हैं-'दहेज की आड़ में पत्नी सताए तो हमें बताएं'-पुरुष जागृति मोर्चा। नीचे फोन नंबर भी दिया है। अक्सर मेरा मन करता है कि फोन करके देखूं, उधर होता क्या है, फिर दिमाग में आता है कि नारी-कंठ तो उन्हें दुश्मन के कैंप का जासूस दिखेगा। कभी कोई पुरुष सहकर्मी पकड़ में आया तो अवश्य पुछवाऊंगा कि पÂत्नयां उन्हें सताती हैं तो कैसे, और प्रतिकार के रिए वे करती हैं तो क्या।"[24] अनामिका की यह बात पुरुष वर्ग पर चुनौती है। चुनौती भरी भाषा में वे पुरुषों से पूछना चाह रही हैं कि Â ियों ने तुम पुरुषों का क्या बिगाड़ा? कैसे? क्यों?

अनामिका की राय में मां से जुड़े रहने के कारण रड़कों में जो ी सहज व्यवहार होता है उन्हें दूर करने में बहुत ज्यादा तनाव रड़कों को झेरना पड़ता है। उसी के फरस्वरूप उनकी भाषा सख्त, खुरदुरी और सपाट हो जाती है। रड़कियों को इस तरह का कोई तनाव नहीं होता। इसी कारण उनकी भाषा सहज, अंतरंग, प्रवाहपूर्ण होती है। देरीदा की मान्यता है कि ी-भाषा भाषिक असमंजस से ऊपर नहीं उठती। इस मान्यता से ी भाषाविद् एकमत नहीं है। ीवादी रचनाकारों का मानना है कि मर्दवादी प्रतीकात्मक व्यवस्था का प्रतिकार कम-से-कम भाषिक स्तर पर संभव है और स्वतंत्र अÂस्मता के विकास की खातिर जरूरी भी।

"पैर उतने पसारिए

जितनी रंबी सौर हो!"[25]

'अभ्यागत' नामक अनामिका की कविता की इन पंक्तियों के

संदर्भ में संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा का कथन संगत रगता है-"दरअसर, खोरकर तो यही कहना है कि जो बातें ¯ाी के रिए 'हौआ' हैं वे पुरुष के रिए आनंद हैं। इसीरिए सारी जिंदगी, अश्रीरता और अनैतिकता ¯ाी के कंधों पर बोझ-सी रदी है। सिर उठाना मना है, मुंह खोरने की तो बिसात क्या?" [26] समाज में आज भी कई ऐसी पÂत्नयां हैं जिन्हें मुंह खोरने की आजादी तक नहीं। ¯ाीभाषा या ¯ाीवादी भाषा की जरूरत इस संदर्भ में बेहद होती है। कम से कम Â¯ायां अपने आपको, अपने दुख-दर्द को बांट सकें।

¯ाीवादी रेखन की चुनौतियों पर भी अनामिका ने बात की हैं-पहरी चुनौती है उसकी मध्यवर्गीय चरित्र। वे मानती हैं कि ¯ाीवादी रेखन को फैरने की जरूरत है। दूसरी चुनौती है-देह के केंशेयता को सारवाद के केंशें से बचाना। हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि एक दमन का जवाब दूसरा दमन नहीं। तीसरी चुनौती है प्रायोजित चरित्रों की भीड़ से बचना और चौथी चुनौती नारेबाजियों से और सर्वोच्छेदवाद से। पांचवीं चुनौती है *empowerment* का *emancipation* के रूप में विकास और इस एहसास का विकास भी ¯ाी-मुक्ति की जरूरत है।

गेट आउट व शट अप आदि पितृसत्तात्मक भाषिक प्रयोगों के खिराफ ¯ाी को अपनी जंग रड़नी पड़ती है। उसके रिए सामान्य भाषा नहीं ¯ाीवादी भाषा की सख्त जरूरत है। ¯ाीभाषा या ¯ाीवादी भाषा के मुख्य अवदान के रूप में अनामिका 2 बिंदुओं को प्रस्तुत करती हैं-

"1. जिस तरह अच्छी कविता इÂन्श्यों का पदानुक्रम नहीं मानती-दिर-दिमाग और देह को एक ही धरातर पर अवÂस्थत करती हुई ध्रुवांतों का एक-दूसरे के घर आना-जाना कायम रखती है, ¯ाी-भाषा पर्सनर-पोरिटिकर, कॉÂस्मक-कॉमनप्रेस, सेक्रेड प्रोफेन, रैशनर-सुप्ररेशनर के बीच का पदानुक्रम तोड़ती हुई उद्देश्य स्थान-विधेय स्थान के बीच झ्यूजिकर-चेयर का सा खेर आयोजित करती है जिससे कि बहिरों सुने मूक पुनि बोरें/अन्धों को सब कुछ दरसाई का सही प्रजातांत्रिक महोत्सव घटित होता है।

2. ¯ाी-भाषा ने आधुनिकता का क्लोपन झाड़कर उसके तीनों प्रमेयों का दायरा बड़ा कर दिया है-शुष्क तार्किकता का स्थानापन्न वहां है सरस परा-तार्किकता, परा-तार्किकता जो बुि° को भाव से समृ° करती है।"[27]

पुरुषत्व से मुक्ति की कामना हर ¯ाी चाहती है। इसीरिए उसे खुरकर बोरना और रिखना चाहिए। ¯ाी रेखन का भविष्य अत्यधिक स्वर्णिम होगा। शब्द और भाषा अनादि कार तक टिकेगी। शोषण और दमन के प्रति आक्रोश व्यक्त करती Â¯ायां अपनी रेखन प्रतिभा को आगे बढ़ाएंगी। वर्तमान व्यवस्था में दरारें पैदा करने वारा ¯ाी रेखन आगे भविष्य में उसके उश शीर्ष पर पहुंचेगा।

अनामिका का साहित्य परंपरागत पुरुषवादी मानसिकता से इतर ¯ाीवादी विषयों से जुड़कर समकारीन समय में सबसे अरग एवं विशिष्ट है। ये विषय पुरुष की Âष्ट में सामान्य महत्व रखते हैं या इन पर कोई नोटिस भी नहीं रिया जाता रेकिन Â¯ायों के रिए इनका विशिष्ट महत्व है। साथ ही निजता के साथ सामूहिकता का Âष्टकोण भी इनमें मिर सकता है। सेफ्टी पिन का इस्तेमार सब रोग करते हैं, आम और अमीर रोग भी। रेकिन मजेदार बात यह है कि कोई भी उसमें मौजूद यांत्रिक शक्ति को पहचानने की कोशिश नहीं की है। अनामिका सेफ्टी पिन को इस तरह चित्रित कर रही हैं -'स्टीर की एक छोटी पुरिया-सा'। जैसे सेÂफ्टपिन का पुरुष के रिए कोई महत्व नहीं है रेकिन भारतीय संदर्भ में ¯ाी के रिए इसका एक विशिष्ट अर्थ एवं महत्व है। कभी हम सोचते हैं कि इससे कुछ नहीं होता, यह तो बहुत उपयोगहीन है। रेकिन दुर्घटना में, आपातकारीन अवसरों पर वही वस्तु या व्यक्ति ही काम आता है। मतरब है-हर व्यक्ति, वस्तु में कुछ-न-कुछ क्षमता रहती ही है। उसे संदर्भ के अनुसार उपयोग करना पड़ता है। अतः सामान्य से दिखने वारे विषयों को भी अनामिका ने अपनी कविता का विषय बनाया है एवं सामान्य विषय को असामान्य अर्थ प्रदान किया है। ये विषय विशिष्ट मानसिक सोच एवं प्रकृति में ¯ाी के रिए महत्वपूर्ण हो उठते हैं जबकि पुरुषों के रिए इनका कोई औचित्य भी नहीं होता है।

इसी प्रकार के विषय हैं-केश, नाखून। जुएं निकारती औरतें सामाजिक क्रिया के साथ सामूहिकता का कर्म भी करती हैं। ये सब विषय विशिष्ट मानसिक प्रकृति, भाव-बोध एवं रुचि से जुड़ते हैं जिनका ¯ाी के दैनिक जीवन में विशिष्ट महत्व होता है। इस स्तर पर देखें तो Â¯ायों के विषय-वैविध्य के साथ उनके भाषिक रूप में भी बदराव देखने को मिरता है। इस तरह अनामिका समकारीन ¯ाी रेखिकाओं में अरग और विशिष्ट हैं। इनके भाव-बोध में नागरिक समाज की ¯ाी के साथ ग्रामीण दैनिक जीवन की Â¯ायों के चित्र भी कविता के विषय बनते हैं। अतः विषय की प्रकृति के अनुरूप भाषिक रूप में भी बदराव देखने को मिरते हैं। Â¯ायों का अनुभव संसार असीमित

है और विशिष्ट भी। अनामिका ने 'मौसियां' कविता में ¯ाी के बुआ, मौसी और चाची के रूप में ऐसे संबंधों की चर्चा की है जो परिवार में बहुत महत्वपूर्ण और मधुर होते हैं। इनके अरावा अनामिका ने जनाना बीमारी, एक परित्यक्ता की मौत, रेखा दी, अस्पतार गेट के समोसे इत्यादि विषयों पर कविताएं रिखी हैं जो सामान्य और साधारण हैं। रेकिन रचनाकार के वैशिष्टय से विशिष्ट बन गये हैं। अनामिका की काव्य भाषा देशज शब्दों के अत्यधिक प्रयोग और निजी अनुभव से गढ़े गये बिंबों के कारण अनूठी है। उसमें रोक-रंग है, उनके मातृ-प्रदेश के अनुभवों का स्वाद है और महानगरीय जीवन की कडुवाहट और पैनापन भी है।

संदर्भ

1. ¯ाी उपेक्षिता, प्रभा खेतान, पृ. 54.

2. ¯ाी उपेक्षिता, प्रभा खेतान, पृ. 58

3. ज्ञान का ¯ाीवादी पाठ, सुधा सिंह, पृ.135

4. मेहरुन्नीसा परवेज, इंडिया टुडे, साहित्य वार्षिकी, पृ. 4

5. संवेद, अभूबर 2009, पृ. 5

6. खुरदुरी हथेरियां, अनामिका, पृ. 14

7. कविता में औरत, अनामिका, पृ. 32

8. अनुष्टुप्, अनामिका, पृ. 45

9. आरोचना, अभूबर-दिसंबर 2009, पृ. 101

10. संवेद, अभूबर 2009, पृ. 17

11. कविता में औरत, पृ. 40

12. अनुष्टुप्, पृ. 46

13. मन मांझने की जरूरत, अनामिका, पृ.11

14. मन मांझने की जरूरत, पृ.12

15. वसुधा, अभूबर-मार्च 2004, पृ. 448

16. दस –ारे का पींजरा, अनामिका, पृ. 98

17. ज्ञान का ¯ाीवादी पाठ, सुधा सिंह, पृ. 75

18. उत्तर आधुनिक साहिÂत्यक विमर्श, सुधीश पचौरी, पृ. 121

19. पानी जो पत्थर पीता है, अनामिका, पृ. 20

20. कविता में औरत, पृ. 7

21. वागर्थ, मार्च 1998, पृ. 52

22. दस –ारे का पींजरा, पृ.7

23. खुरी खिड़कियां, पृ.173

24. एक ठो शहरः एक गो रड़की, अनामिका, पृ. 42

25. दूबधान, अनामिका, पृ. 53

26. खुरी खिड़कियां, मैत्रेयी पुष्पा, पृ.173

27. संवेद, अभूबर 2001, पृ. 28